7

राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो...

राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो, रूप न जानै रे।।टेक।।

अविचल चिनमूरत विनमूरत, सुखी होत तस ठानै रे।।टेक।।

तन धन भ्रात तात सुत जननी, तू इनको निज जानै रे।
ये पर इनहिं वियोग योग में, यौं ही सुख दुःख मानै रै।।१।।टेक।।

चाह न पाये, पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघानै रे।
विपतिखेत विधिबंधहेत पै, जान विषय रस खानै रे।।२।।टेक।।

नर भव जिनश्रुतश्रवण पाय अब, कर निज सुहित सयानै रे।
'दौलत' आतम ज्ञान-सुधारस, पीवो सुगुर बखानै रे।।३।।टेक।।

हे प्राणी! तुम परपदार्थों में ही रमण कर रहे हो और अपना ज्ञानानंद स्वरूप नहीं जानते। तुम तो अविचल, चैतन्यमूर्ति और अमूर्तिक तत्व हो तथा जिसके निश्चय करने से पूर्ण सुख प्राप्त होता है।

हे चेतन! शरीर, धन, भाई, पिता, पुत्र, माता आदि ये सब तेरे से पर हैं और तुम इनको अपना समझ कर इनके संयोग वियोग में अर्थात् मिलने पर सुखी और वियोग होने पर दुखी हो रहे हो।

हे चेतन! ये इन्द्रिय विषय इच्छा करने पर प्राप्त नहीं होते हैं और प्राप्त होते भी हैं तो ये तृष्णा को ही बढ़ाते हैं, तथा इनके सेवन के कारण अपना ज्ञान भी हीन होता जाता है और ये घोर विपत्ति को उत्पन्न करने वाले कर्मबन्ध के कारण हैं । ऐसा जानकर भी तू इनको सुख का भण्डार समझता है।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि हे बुद्धिमान चेतन! अब तो तुझे मनुष्य जन्म और जिनवाणी श्रवण का उत्तम अवसर प्राप्त हुआ है इसलिये अब तू अपना हित कर और श्रीगुरु जिसकी महिमा गाते हैं उस आतमज्ञान रूपी अमृत रस का पान कर।